शोध लेख : 'अस्तित्व' उपन्यास में चित्रित नारी अस्मिता

-अनुराधा कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग (पंजाब विश्वविद्यालय) चंडीगढ़, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में सहभागिता के साथ आलेख/ प्रपत्र वाचन एवं विभिन्न पत्रिकाओं तथा सम्पादित पुस्तकों में शोध आलेख प्रकाशित।
https://sahityacinemasetu.com/research-article-astitva-upanyas-mein-chitrit-naree-asmita/

अस्तित्व से अभिप्राय है स्वयं के होने का बोध अर्थात अपनी खुद की पहचान। यदि बात नारी सन्दर्भ में की जाये तो आज नारी स्वयं के अस्तित्व की तलाश में भटक रही है। वर्तमान प्रगति के बावजूद सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक उपलब्धियों के पश्चात स्त्री के हृदय में इस बात की पीड़ा रहती है कि आखिर कब तक वह मात्र भोग व उपयोग की वास्तु बनी रहेगी? आखिर कब तक नारी अस्तित्व और अस्मिता को समाज द्वारा नौंचा खाचौंटा जायेगा? कब तक पुरुषात्मक सत्ता नारी को देह मात्र सझती रहेगी? नारी को आज इस मानसिकता से मुक्त हो देह की पृष्ठभूमि से निकल अपने मस्तिष्क का लोहा सम्पूर्ण विश्व में मनवाना होगा तथा इसके लिए अति आवश्यक है वह स्वयं अर्थात अपने आप से रुबारु हो। नारी-विमर्श को आधार बना कर साहित्य जगत में अनेक लेखिकाओं व लेखकों ने लिखा है जिनमें से आठवें दशक के उत्तरार्ध में आधुनिक हिंदी साहित्य में चमकते हुए सितारे के रूप में ज्ञान प्रकाश विवेक का नाम शामिल है, इन्होने विभिन्न विधाओं पर अपनी सशक्त लेखनी चलाई है जैसे कहानी संग्रह, कविता संग्रह, गज़ल संग्रह, आलोचना, उपन्यास आदि के मध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। प्रस्तुत उपन्यास मात्र स्त्री संघर्ष की गाथा ही नहीं है अपितु वह स्त्री मन की संवेदनाओं, हृदय की कोमल भावनाओं और अपने सपनों को साकार करने की चाह को भी व्यक्त करता है। एक औरत जब अपने अस्तित्व की तलाश करते हुए उसे बचाए रखने की जदोजहद करती है तो उसे अनेक समस्याओं का अकेले सामना करना पड़ता है और अकेलेपन से जूझने के साथ ही छद्दम मुखौटा लागए समाज से लड़ना भी जैसे उसकी नियति बन जाता है, परन्तु वह परिस्थितियों से हार न मानकर सामन्तवादी समाज एवं उपभोग्तावादी संस्कृति में अपने अस्तित्व की लड़ाई निरंतर लड़ रही है।

अस्तित्व अर्थात वजूद, होने का भाव, हस्ती, हैसियत, सत्ता, विद्यमानता, मौजूदगी, उपस्थिति आदि। शब्दकोश के अनुसार – “सत्ता का भाव, विद्यमानता होना, मौजूदगी।”[1] जब नारी को अपना अस्तित्वबोध होता है कि उसका जीवन केवल साँस लेने वाली धोकनी नहीं, अपितु उसके जीवन का भी कोई उद्देश्य है तथा उस उद्देश्य प्राप्ति के लिए उसे संघर्ष का मार्ग चुनना होगा। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है लेकिन फिर भी कभी पुरुष को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। इसी स्थति पर प्रश्न करती हुई आशारानी व्होरा कहती है – “स्त्री पुरुष परस्पर पूरक होकर भी दो स्वतंत्र इकाइयाँ हैं। दोनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, पर दोनों की स्वतंत्र अस्मिता क्यों नहीं है?”[2] वास्तव में देखा जाये तो पुरुष प्रधान समाज होने के कारण अधिकार क्षेत्र उसने पास रखा और स्त्री को मजबूरन हर निर्णय के लिए उस पर आश्रित रहना पड़ा। ज्ञान प्रकाश विवेक ने अपने उपन्यास में सरयू के माध्यम से रूढ़िगत मानसिकता को ध्वंस होते हुए दिखया है। उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र सरयू आधुनिक समाज की नारी का प्रतिनिधित्व करती है जो कल्पनाशील, आत्मसम्मानी एवं भावुक हृदय की स्वामिनी है। इसके बावजूद भी कई बार ऐसा होता है कि वह स्वयं के अस्तित्व को लेकर संशय में रहती है – “सच क्या था, मुझे मालूम नहीं। हमारे अपने भीतर के सच, क्या सचमुच हमें मालूम होते हैं? मैं सच या सच की छायाएँ

पकड़ने का यत्न करती। हार जाती, हांफ जाती। पहचान शायद सच के अतिरिक्त, अपने वजूद और अपनी उपस्थिति की भी थी। हर बार मुझे लगता कि मैं अपने सवालों के जंगल में आ खड़ी हूँ – चीखती हुई दश्ते तन्हाई के बीच! बे – सरोसामाँ।"[3] सवालों के भवंर में उलझे रहने के बाद भी सरयू अपने अस्तित्व को बचाए रखना चाहती है, दुनिया के शोरगुल या भीड़ से उसे कोई सरोकार नहीं।

पढ़े लिखे आधुनिक कहे जाने वाले समाज में भी नारी जीवन की यह कैसे विडम्बना है कि विवाह जैसे विषय पर उसे स्वतंत्र तो दी जाती है परन्तु केवल उपरी तौर, पर आन्तरिक रूप से तो जैसे उसके सम्पूर्ण अस्तित्व पर किसी और का ही अधिकार हो। सरयू के पिता की नजर क्लासीफाइड पढ़ते हुए एक विचित्र विज्ञापन पर जाती है जिसमें विवाह के लिए मानसिक स्तर उच्च रखने वाली लड़की की मांग की गई, वह लड़के को घर पर बस इसलिए बुला लेते है की जान सके लड़के पास ऐसा कोना बैरोमीटर है जिससे किसी का मेंटल स्टैण्डर्ड मापा जा सकता है। उनके इस प्रयोग का शिकार या फिर एक खेल का हिस्सा मजबूरन सरयू बन जाती है। एक अनजान दंभ से भरा हुआ लड़का मात्र कुछ सवाल जवाब कर उस से विवाह की सहमती दे देता है – " मैं आवेश में थी लड़के की बात अब भी मेरे कानों में शीशे की तरह पिघल रही थी, मुझे लगा की एक संपन्न व्यक्ति मुझे ठगने आया है। मेरी निजता, मेरा आत्मसम्मान, मेरी संवेदना, मेरी सोच यहाँ तक कि मेरे वजूद को मेरे भीतर से निकाल कर चला जाना चाहता है। उसने मुझे कंकाल में बदल दिया है।"[4] सरयू को लगा उसके भीतर जैसे भावनाओं का सुंदर संसार टूट-फूट रहा है और इस टूटन की किसी को कोई खबर नहीं, माँ, बाप, भाई सब चाहते हैं की वह उस अहंकारी लड़के से विवाह कर ले। यह स्त्री जीवन की त्रासदी ही है कि परिवार होने के बाद भी उसे जीवन रुपी बीहड़ में अकेला छोड़ सब तटस्थ खड़े उसका तमाशा देख रहे हैं। प्रश्न सम्पूर्ण जीवन का है, विवाह कोई रफ़ ड्राफ्ट नहीं जिसे बाद में फेयर किया जा सके। अस्तित्व बोध होने के बावजूद भी एक औरत कितनी मजबूर,बेबस, लाचार व बंधी हुई महसूस करती है जब वह न चाहते हुए भी परिवार के कहने पर सब कुछ करने के लिए विवश है। "मैंने अपने भीतर झाँका! कहाँ खड़ी हूँ मैं? कौन हैं ये सब? तटस्थ लोग! ये लोग खुद कुछ नहीं बोल रहे, लेकिन ये लोग चाहते हैं कि मैं वही बोलू जो इनके मन में है।"[5] परिवार हो या समाज सभी स्त्री से यही उम्मीद करते हैं कि वह वही करे जो उनकी मर्जी से हो ।

समाज में एक सीमित वर्ग है उन औरतों का जिनकी स्वार्जित गुणों और अधिकारों के कारण स्थिति समाज में बेहतर बनी हुई है वरना आज भी ज्यादातर औरतों का वजूद किसी के लिए मायने नहीं रखता। अस्तित्व की नायिका के साथ भी यही हुआ, बिना उसकी मर्जी सुने एक हफ्ते के भीतर उसका विवाह एक ऐसे आदमी से कर दिया गया जो नपुंसक है और पत्नी नाम के प्राणी से कोई सरोकार नहीं है – " अब सोचती हूँ हर कंही पुरुषवादी समाज है। स्त्री रहे तो कहाँ रहे.... यहाँ मैं पिछले सन्डे से इस सन्डे तक क्रमशः अजनबी होती आई हूँ। एक ऐसे कांच के खिलौने की तरह जो गुदगुदे कालीन पर सैंकड़ों बार फैंका गया। काश, में टूट-फूट जाती। चकनाचूर हो जाती..... ।"[6] भले ही सामाजिक दृष्टि से उसका विवाह हो गया हो परन्तु घर उसे अपना पत्नी होने का अधिकार कभी न मिला। अतुल के पिता अपने बेटे की कमी को छुपाने के लिए सरयू को फैक्टरी की मालकीन बनाना चाहते हैं। स्त्री से उसका फैसला पूछना एक छलावे के सिवाय और कुछ भी नहीं है क्यूंकि होना तो वही है जो घर का मर्द चाहेगा। सरयू के ससुर उस से पूछते हैं की उसने क्या फैसला किया तब वह अपने मन में सोचती है "फैसला शब्द पर मुझे हंसी आ गयी। क्या स्त्रियों के पास फैसला करने का हक होता है? फैसला करते वक़्त कितने दबावों में घिरी होती है वह, जैसे की वह। हाथ काट कर दस्तखत कराने वाले पुरुष मुझसे पूछते हैं की मैं कलम क्यों नहीं उठाती।"[7] एक बार फिर सरयू को अपना अस्तित्व धुंधलाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। भले ही परिस्थितिवश उसे मिल

मालकिन बनना पड़ा परन्तु उसका हृदय स्वयं को स्थापित करना चाहता है जहाँ उसकी अपनी एक अलग पहचान हो– "लेकिन मैं? मैं यहाँ किस आधार पर मैनेजर या इस से मिलती जुलती किसी कुर्सी पर बैठूंगी? जो चीज़ संघर्ष और श्रम से आर्जित न की जाये उस पर अधिकार जमाना, शायद तिनकों के पूल पर खड़े होने जैसा हो।"[8] सरयू यथार्थ को स्वीकार कर चलने वाली आधुनिक नारी है जिसे अपने अस्तित्व का आभास तो है बस उसे बचाए और बनाये रखने का संघर्ष है।

नारी जीवन की तमाम आकांक्षाएं, संभावनाएं, त्रासदी, संघर्ष, मुक्ति की चाह, सशक्त होने के लिए उठाते कदम अस्तित्व उपन्यास में देखे जा सकते हैं। "यह पुरुष प्रधान समाज है, जहाँ सदियों से पुरुष सत्ता के अधीन महिलाएं प्रताड़ित होती रही हैं। परम्परा, संस्कृति, रस्मों-रिवाज और धर्म के नाम पर महिलाओं का उत्पीडन किया जाता रहा। उन्हें ये जंजीरे तोड़ कर खुद को आजाद करना होगा। वरना कभी भी उनके साथ समान मानव की तरह व्यवहार नहीं किया जायेगा।"[9] सत्य को पहचान सरयू मजदूरों की भलाई को केंद्र में रख कर फैक्टरी में सख्त निर्णय लेती है। जब वो देखती है कि मिल के भीतर मजदूर वर्ग का मनचाहा शोषण किया जा रहा है तो वह – "मैंने कॉन्ट्रैक्टर की छुट्टी कर दी और उसके तमाम वर्करों को फैक्टरी में भर्ती कर दिया। यह एक क्रन्तिकारी कदम था, मेरे पक्ष में कई आवाजें उभरी। मेरे विपक्ष में भी दबे स्वर सुनाई दिए, मुझे मालूम था कि एक्शन के पीछे रिएक्शन होता है।"[10] बाहर सरयू कितनी भी सशक्त महिला के रूप में रहे परन्तु घर के परिवेश में आ कर स्वयं को फिर से किसी भयावह निर्जन स्थान पर अकेली पाती जहाँ उस के साथ उसका मगरूर पति जानवरों सा व्यवहार कर उसे मरता पीटता – "वह मुझे मरता। मैं चुप रहती। इस उम्मीद के साथ कि आनेवाला दिन अच्छा हो । उसका मरना- जैसे मेरे स्त्रीत्व का अपमान हो।"[11] यह जैसे औरत की नियति बन गई कि प्रतिपल ये एहसास करवाया जाये जैसे उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। ऑफिस में सरयू के द्वारा बुलाई गई मीटिंग में सभी पुरुषों ने जैसे उसकी उपेक्षा कर उसके अस्तित्व को सिरे से ही नकार दिया। वह वहाँ किसी टूटी हुई कश्ती या फटी हुई किताब अथवा पुराने खंडहर की भांति स्वयं को अपमानित और उपेक्षित समझ रही थी। बार-बार अपमान का घूंट पीते हुए आखिर एक स्त्री के सब्र का बांध टूट ही गया। "नहीं भूल सकती मैं। मेरा ही नहीं, मेरी आत्मा का, मेरी देह का, मेरे अस्तित्व का अपमान किया है मिस्टर अतुल ने।"[12] उसे आज ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे रीढ़ विहीन पुरुषों के बीच वो फंस गई है, हिम्मत न हार बल्कि अपने अस्तित्व की रक्षा का भार अपने हाथों में लेते हुए सरयू ने मकान रुपी कैदखाने से स्वयं को मुक्त करने का निर्णय लिया, मनो उसने अपने अकेलेपन को अब अपनी ताकत बना लिया हो। नारी मुक्ति व समाज के पुनर्गठन के लिए आशारानी व्होरा मानती हैं कि – "स्त्री के सामने पहले मुक्ति का लक्ष्य स्पष्ट हो। उसे दिशा की पहचान हो। इसी लक्ष्य, इसी दिशा के लिए सबसे पहले उसे अपने स्त्रीत्व के हीन भाव से मुक्ति पाना है। समझना है, मानना है कि वह किसी भी तरह पुरुष से हीन नहीं है; न शारीरिक रूप से न प्राकृतिक रूप से। सामाजिक हीनता का निवारण समान नागरिकता और मानवीयता की इसी राह से संभव होगा।"[13] यह समझने की समय के साथ आवश्यकता है कि नारी को किसी पुरुष से विद्रोह कर मुक्ति नहीं चाहिए बल्कि उसे आजादी चाहिए अपने अस्तित्व की, अपने होने के वजूद की।

नारी जीवन की तुलना धान की पौध के साथ भी की गई है जिसे बीजा तो किसी और स्थान पर जाता है परन्तु थोड़ी सी बड़ी होते ही किसी अन्य खेत की मिटटी में रोप दिया जाना उसकी नियति है। यही स्थिति लड़की की होती है, बड़ी होते ही अपना घर कह कर विवाह के पश्चात उसे किसी अन्य घर के वातावरण में सम्पूर्ण आयु के लिए भेज दिया जाता है। सरयू जैसी औरतों की स्थिति सच में हृदय को उद्वेलित करती है जिन्हें अपने पति का घर छोड़ पिता के घर में आश्रय लेते हुए असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ता

है – "फिर वही माता पिता का घर! यह लौटना कैसा होगा...? क्या स्वागत योग्य? या फिर उपेक्षा भरा! अवांछित होना कितना त्रासद होता है? इस घर में, जहाँ से मैं विदा हुई थी, पुनः वहाँ होना, किसी अतिरिक्त के होने जैसा नहीं होगा क्या...? क्या सचमुच कोई प्रश्न नहीं करेगा?"[14] ये कैसी विड़म्बना है हमारे समाज की जहाँ आज भी बेटी को विवाह के पश्चात वापिस आने का वो अधिकार और प्रसन्नता नहीं है जो बेटों को दी गई है। सरयू उन लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज और लोगो की परवाह किये बैगैर एक स्वतंत्र निर्णय ले अपने अस्तित्व की तलाश नए सिरे से आरंभ कर ससुराल,ऐशोआराम, वैभव का त्याग कर निकल जाती है, परन्तु पिता के घर वापिस आने का निर्णय समाज को कदापि सहर्ष स्वीकार नहीं। वह पुरुषों द्वारा पोषित नियतिवाद से टकरा कर अपनी स्वंत्रत राह बनने वाली नारी है। चित्रा मुद्दगल के अनुसार – "महानगरों में ही सही, परिवर्तित समय की पदचाप को स्पष्ट महसूस किया जा सकता है। सहमतियाँ-असहमतियाँ तो उस बदलाव की अनिवार्यता के विवेक को तराशने की छेनी होती है। वे छेनियाँ अब उन्ही के हाथों में हैं जो अपना समय गढ़ने और तराशने की जिम्मेदारी स्वयं वहन करने को प्रस्तुत है।"[15] काल परिवर्तन के साथ ही निश्चित रूप से अब औरतों की समाज में छवि बदलनी चाहिए।

अंत में यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि वही महिलाएं आज आदर्श समझी जा सकती हैं जो संघर्षों का सामना कर अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करते हुए स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर सकें। इसका यह अर्थ कदापि नहीं की इसके लिए पुरुष विरोधी हो जाये, परन्तु आवश्यकता है दोहरे मापदंडों को समाप्त कर समानता और आपसी सहयोग की नींव रखी जाये जिसमें कोई किसी का गुलाम न हो। बस यही सार्थक जीवन जीने की कला है सरयू की भांति स्वयं का बोध होने पर अपनी रक्षा का भार अपने कन्धों पर उठाते हुए मोह के बंधन से मुक्त हो निर्णय लेने का साहस कर सके। भय, तनाव, जीवन की जटिलताओं, विपरीत परिस्थितयां, असुरक्षा का भाव, अकेलेपन का बोझ आदि का डर अपने हृदय से प्रत्येक स्त्री को त्यागना होगा तभी वह वास्तव में स्वतंत्र रूप से मुक्त गगन में विचरण कर सकेगी।

सन्दर्भ सूची:

[1] वर्मा, रामचंद्र, लोकभारती प्रमाणिक शब्दकोश, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन, 1996, पृष्ठ – 232

[2] व्होरा, आशारानी, स्त्री सरोकार, दिल्ली : आर्य प्रकाशन मण्डल, 2006, पृष्ठ – 32

[3] विवेक, ज्ञान प्रकाश, अस्तित्व, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, 2005, पृष्ठ – 7

[4] यथावत, पृष्ठ – 30

[5] यथावत, पृष्ठ – 82

[6] यथावत, पृष्ठ – 86

[7] यथावत, पृष्ठ – 130

[8] यथावत, पृष्ठ – 132

[9] वुल्फ़, वर्जीनिया (अनुवाद – मोज़ेज माइकेल), अपना एक कमरा, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2018, पृष्ठ – 7

[10] विवेक, ज्ञान प्रकाश, अस्तित्व, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, 2005, पृष्ठ –148

[11] यथावत, पृष्ठ – 164

[12] यथावत, पृष्ठ – 212

[13] व्होरा, आशारानी, स्त्री सरोकार, दिल्ली : आर्य प्रकाशन मण्डल, 2006, पृष्ठ – 31

[14] विवेक, ज्ञान प्रकाश, अस्तित्व, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, 2005, पृष्ठ –215

[15] चित्रा, तहखानों में बंद अक्स, नई दिल्ली : कल्याणी शिक्षा परिषद्, 2014, पृष्ठ – 135